उतावली न करें उद्विग्न न हों

इस जल्दबाजी से क्या फायदा—

आतुरता और अधीरता की बुराई मनुष्य को बुरी तरह परेशान करती है। प्रायः हमें हर बात में बहुत जल्दी रहती है, जिस कार्य में जितना समय एवं श्रम लगाना आवश्यक है उतना नहीं लगाना चाहते, अभीष्ट आकांक्षा की सफलता तुर्तफुर्त देखना चाहते हैं। बरगद का पेड़ उगने से लेकर फलने-फूलने की स्थिति में पहुँचने के लिये कुछ समय चाहता है पर हथेली पर सरसों जमी देखने वाले बालकों को इसके लिये धैर्य कहाँ ? यह आतुरता की बीमारी जन-समाज के मस्तिष्कों में बुरी तरह प्रवेश कर गई है और लोग अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ऐसा रास्ता ढूँढ़ना चाहते हैं जिससे आवश्यक प्रयत्न न करना पड़े और जादू की तरह उनकी मनोकामना तुरन्त पूरी हो जाय।

राजमार्ग छोड़ कर लोग पगडण्डी तलाश करते हैं, फलस्वरूप वे काँटों में भटक जाते हैं ? हथेली पर सरसों जम तो जाती है पर उस सरसों का तेल डिब्बे में कोई नहीं भर पाता। बाजीगर रेत का रुपया बनाते हैं पर उन रुपयों से जायदाद नहीं खरीद पाते। कागज का महल खड़ा तो किया जा सकता है पर उसमें निवास करते हुए जिन्दगी काट लेने की इच्छा कौन पूरी कर पाता है ? रेत की दीवार कितने दिन ठहरती है ?

सुख-शान्ति के लक्ष्य तक धर्म और सदाचार के राजमार्ग पर चलते हुए पहुँच सकना ही सम्भव है। यह रास्ता इतना सीधा है कि इसमें शार्टकट की—पगडण्डी की—गुन्जायश नहीं छोड़ी गई। हमारे तत्वदर्शी पूर्व पुरुषों ने मानव जीवन को सफलता, समृद्धि, प्रगति और शान्ति से परिपूर्ण कर देने वाला जो मार्ग सबसे सरल पाया, उसी राज पथ का नाम धर्म एवं सदाचार

रखा। इस मार्ग के हर मील पर अधिकाधिक प्रफुल्लता भरा वातावरण मिलता जाता है।

सुख समृद्धि के लिए धैर्यपूर्वक सदाचरण के मार्ग पर चलते रहना और अपने में जो दुर्बलताएँ हों उन्हें एक-एक करके हटाते चलना यही तरीका सही है। इस सुनिश्चित पद्धति को छोड़कर अधीर लोग बहुत जल्दी—अत्यधिक प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं और जो कुछ उनके पास था उसे भी गँवा बैठते हैं। जल्दी ही बहुत धन कमा लेने और आर्थिक स्थिति सुधार लेने की कामना से प्रेरित होकर लोग चोरी, बेईमानी, ठगी, विश्वासघात, रिश्वत जैसे अनुपयुक्त मार्गों को अपनाते हैं। वे सोचते हैं सीधे मार्ग से बहुत जल्दी धन सञ्चय करना सम्भव न होगा इसलिये अनीति के मार्ग पर चलते हुए जल्दी ही बहुत धन क्यों न कमा लिया जाय? ऐसा लगता है यह तर्क आज अधिकांश लोगों को पसन्द आ गया है और वे किसी भी प्रकार जल्दी से जल्दी मनमाना धन प्राप्त करने के लिये धर्म और सदाचार के सारे आधारों को तिलाञ्जलि देकर अनीति की कमाई करने में लगे हुए हैं। व्यापार के बारे में यहाँ तक कहा जाने लगा है कि वह बिना झूठ और बेईमानी के चल ही नहीं सकता। रिश्वतखोरी एक आम बात बनी हुई है। मजदूर अपने कर्त्तव्य को पूरा न करके श्रम और समय की चोरी करते हैं। धर्म के नाम पर जो पाखण्ड और ठग विद्या चलती है उससे कौन अपरिचित है? इन दुष्प्रवृत्तियों के मूल में यही धारणा काम कर रही है कि सदाचार नहीं, अनीति हमारे लिए अधिक लाभदायक है। उसी से जल्दी लाभ हो सकता है।

किन्तु यह बात सच कहाँ है? अनीति की प्रकृति के व्यापक रूप में फैल जाने पर प्रत्येक चोर भी अन्य चोरों द्वारा ठगा और सताया जाता है। एक व्यक्ति दूध में पानी मिलाकर अधिक पैसे कमा लेता है। जब उसका बच्चा बीमार पड़ता है तो उसकी मामूली-सी बीमारी को बहुत बड़ी बताकर डाक्टर डराता है और इलाज में मनमाने पैसे वसूल करता है। फिर उस डाक्टर को चैन कहाँ? बाजार में अपनी स्त्री के लिए जेवर खरीदने जाता है

तो आधी पीतल मिला हुआ सोना उसके हाथ में थमा दिया जाता है। वह स्वर्णकार इनकम टैक्स के अधिकारी द्वारा निचोड़ा जाता है और फिर 'ऐन्टीकरप्शन' वाले उस अधिकारी का भी तेल निकाल लेते हैं। यह सिलसिला चलते-चलते अन्ततः अनीति की कमाई करने वाला हर व्यक्ति खाली हाथ रह जाता है। डाकू अक्सर बहुत धन लूटकर ले जाते हैं पर जहाँ चोरी का माल बेचते हैं वह आधे पैसे भी नहीं थमाता। कारतूस और बन्दूकें खरीदने में, छुके छिपे खाद्य पदार्थ मँगाने में कई गुने दाम उन्हें भी देने पड़ते हैं। इस प्रकार बहुत कमाई करने पर भी अन्ततः वे खाली हाथ ही रह जाते हैं और गरीबी तथा परेशानी ही पल्ले बँधी रहती है। किसी चोर-डाकू के महल बँगले खड़े होते कहाँ देखे जाते हैं ?

शरीर को बलवान् बनाने के लिये लोग आहार-विहार का संयम रखने, दिनचर्या और श्रमशीलता पर ध्यान देने, ब्रह्मचर्य से रहने आदि आवश्यक नियमों का पालन करने के राजमार्ग पर चलने की अपेक्षा टानिक पीने कुश्ते खाने और माँस, मछली अण्डे निगलने की पगडण्डी ढूढ़ते हैं। पर क्या किसी को इन खोटे रास्तों पर चलते हुए स्वास्थ्य सुधारने का अवसर मिला है ? थोड़ी देर के लिए यह तरीके कुछ लाभ दिखा सकते हैं पर अन्ततः जीवनी शक्ति नाश करने वाले इन टानिकों से अनेक बीमारियों के चंगुल में फंसना पड़ता है और अकाल मृत्यु असमय ही सामने आ खड़ी होती है।

मन की प्रसन्नता के लिए लोग विषय वासनाओं पर ऐसे टूटते हैं जैसे मछली-आटा लगे हुए काँटे की नोंक को निगलती है। कहा जाता है कि उससे मन की प्रसन्नता और स्फूर्ति बढ़े। चाय, सिगरेट, शराब, भाँग, गाँजा आदि पीने वाले अपनी आदत के समर्थन में यही बात कहते हैं। व्यभिचारी, वेश्यागामी और घृणित तरीकों से अपना जीवन तत्त्व निचोड़ते रहने वाले व्यक्ति भी अपनी कुटेवों का समर्थन इसी आधार पर करते हैं। सिनेमा, ताश, शतरञ्ज आदि व्यसनों के बारे में भी ऐसा ही कुछ कहा जाता है। हो सकता है कि तत्काल कुछ देर के लिए इन कुटेवों-व्यसनों में फँसे हुए लोगों को कुछ

प्रसन्नता मिलती हो। पर धीरे-धीरे उनका धन, समय, स्वास्थ्य और चरित्र गिरता है। उनकी स्थिति दिन-दिन खोखली होती जाती है।

सम्मान प्राप्त करने के लिये लोग उल्टे तरीके काम में लाते हैं। विवाह शादियों में गाढ़ी कमाई के महत्त्वपूर्ण पैसों की होली इसलिए जलाई जाती है कि देखने वाले हमें अमीर समझें और अमीरों को जो सम्मान मिलता है वह हमें भी मिले। दहेज की हत्यारी कुप्रथा के पीछे आर्थिक कमाई का भाव उतना नहीं होता जितना कि अपनी नाक ऊँची करने का। सोचा जाता है कि जिसे जितना अधिक दहेज मिलेगा वह उतना ही बड़ा आदमी समझा जायगा। नेता बनने के लिए चुनाव में जीतने के लिए लोग कैसे-कैसे घृणित हथकण्डे काम में लाते हैं? इसके मूल में यही प्रवृत्ति काम कर रही होती है कि हमारा व्यक्तित्व लोगों की आँखों में चमके। अखबारों में झूठी नामवरी छपवाने के लिये लोग कितने आतुर रहते हैं। सोचने की बात है कि क्या कभी इन हथकण्डों से किसी को स्थायी कीर्ति मिली है? भीतरी महानता को बढ़ाये बिना क्या कभी कोई व्यक्ति स्थायी सम्मान का अधिकारी बन सका है?

पर्चे नकल करके या अन्य बुरे तरीकों को अपना कर कई लोग परीक्षा में उत्तीर्ण हो रहे हैं, पर उन्हें विद्या से प्राप्त होने वाली योग्यता कहाँ मिलती है? स्त्री, बच्चों और कर्मचारियों को डरा धमकाकर या उनकी मजबूरियों से लाभ उठाकर उन्हें अपना वशवर्ती रखा जा सकता है, पर हृदय को जीत सकना बिना आत्म-त्याग के, बिना सच्चे प्रेम के एवं बिना सौजन्य के कहाँ उपलब्ध होता है? अनुचित सहायता से कई लोग ऊँचे पदों पर जा पहुँचते हैं पर उस पद की शोभा और सफलता उन कुपात्रों के द्वारा कहाँ बन पाती है? सत्पात्रता का ही सदा महत्त्व रहा है और आगे भी रहेगा। जालसाजी के आधार पर मिली हुई सफलताएँ कितने दिन ठहरती हैं; और उनसे क्या कोई प्रयोजन सिद्ध होता है?

आत्म-कल्याण के लिए स्वर्ग और मुक्ति की प्राप्ति के लिए यह अनिवार्य है कि हम अपने कुविचारों और कुकर्मों को समाप्त करें, सहृदयता,

प्रेम, सेवा और उदारता की भावनाओं का विकास करें। पर सस्ते तरीके ढूंढ़ने वाले इस झंझट में न पड़कर किन्हीं तीर्थ-यात्रा, देव-दर्शन, ब्रह्मभोज कथा-वार्ता या ऐसे ही किन्हीं छोटे-मोटे कर्मकाण्डों को पर्याप्त मान बैठते हैं। उनकी यह आत्मवंचना कभी सार्थक भी हो सकेगी इसमें पूरा-पूरा सन्देह है। मुक्ति का सीधा रास्ता है—वासनाओं और तृष्णाओं के बन्धनों से छुटकारा प्राप्त करना। आत्म-चिन्तन, आत्म-मनन, आत्म निरीक्षण, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण और आत्म-विकास की सीढ़ियों पर चढ़े बिना ही क्या किसी का आत्म-कल्याण के लक्ष्य-तक पहुँच सकना सम्भव है? पर अल्पज्ञ लोग कुछ थोड़ा-सा पूजा, पाठ, दर्शन, झाँकी, दान—दक्षिणा मात्र का रास्ता आधार लेकर जल्दी ही स्वर्ग मुक्ति प्राप्त कर लेना चाहते हैं। इन बेचारों को भला क्या कुछ हाथ लगता होगा?

उन्नति और सफलता के लिए हर व्यक्ति बुरी तरह लालायित रहता है उसको अभीष्ट मात्रा में इच्छित सफलता तुर्त-फुर्त नहीं मिल जाती तो अत्यन्त निराश भी हो जाता है। लोग अनेक काम आरम्भ करते हैं और सफलता में देर लगती देखकर उसे छोड़ बैठते हैं और फिर नया काम शुरू करते हैं। इस प्रकार अपना धन, समय और श्रम बर्बाद करते रहते हैं। लोगों में आरम्भिक जोश बहुत होता है पर वे निराश भी उतनी ही जल्दी हो जाते हैं। जन्त्र-मंत्र की, साधु-सन्तों के आशीर्वाद की, देवताओं के वरदान की भी ऐसे ही लोग बहुत तलाश करते हैं ताकि जल्द-से-जल्द उनका मनोरथ पूरा हो जाय।

हमें जानना चाहिये कि हर वस्तु समयसाध्य है और श्रमसाध्य भी। कोई मार्ग ऐसा नहीं जिसमें रुकावटें और बाधायें न हों। उन्हें हटाने के लिए प्रयत्न भी करना पड़ता है और धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा भी। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, परिश्रमी और पुरुषार्थी को तो सफलता मिलती ही है और यदि न भी मिले तो उसकी प्रतिभा और क्षमता तो बढ़ती रहती है। प्रयत्नशीलता से, पुरुषार्थ से, अध्यवसाय से, व्यक्तित्व निखरता है और उसके आधार पर प्रगति की ऊँची मंजिल पर चढ़ सकना सम्भव हो जाता है।

धैर्य और दूरदर्शिता हमें अपनानी चाहिए। सफलता और प्रगति के पथ पर बढ़ते हुए यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारा पूरा ध्यान अपने पुरुषार्थ पर रहे। फल कब मिलेगा ? कितना मिलेगा ? कैसा मिलेगा ? इसका कुछ निश्चय नहीं। यह सब परिस्थितियों पर निर्भर है। छोटे काम में भी बहुत देर लग सकती है और बड़े काम भी संयोगवश जल्दी हो सकते हैं। मनुष्य के हाथ में उसका प्रयत्न ही ईश्वर ने दिया है और फल का विधान अपने हाथ में रखा है। हमें अपना काम करना चाहिए और ईश्वर का काम उसे करना चाहिये। ईश्वर के काम पर हम कब्जा करें और अपना कर्त्तव्य ईश्वर से पालन कराने की इच्छा करें तो यह अनाधिकार-चेष्टा ही होगी।

फल की आतुरता, प्रगति के मार्ग में सब से बड़ी बाधा है। धैर्य और साहसपूर्वक अपना कर्त्तव्य-पालन करते रहना और उचित मार्ग पर चलते रहना ही हमारे लिए श्रेयस्कर है। जल्दबाजी में लाभ तो कुछ नहीं होता, उलटे सफलता का लक्ष्य दूर हट जाता है। साथ ही ऐसे उल्टे काम भी बन पड़ते हैं जो असफलता से भी अधिक कष्टकारक परिणाम उत्पन्न करने वाले सिद्ध होते हैं।

उतावली के दोष से बचिये—

उतावलापन मनुष्य स्वभाव का एक दोष है। इसीलिए एक कहावत प्रचलित है—'उतावला सो बावला।' उतावले की समता बावले से करने का यही आशय है कि जिस समय मनुष्य उतावली में होता है उस समय उसमें कमोबेश वे सारी कमियाँ और विकृतियाँ आई रहती हैं जो किसी बावले व्यक्ति में पाई जाती हैं।

आवेग, उद्वेग, व्यग्रता, अस्त-व्यस्तता, अस्थिरता, अधैर्य अथवा असंतुलन आदि दोष बावले व्यक्ति के लक्षण हैं। जिस प्रकार बावला व्यक्ति किसी काम को करते समय विचारों का संतुलन खोये रहता है, वह करता हुआ भी यह नहीं जानता, कि जो कुछ वह कर रहा है उसकी अस्त-व्यस्तता

के कारण ठीक नहीं हो रहा है। उसे वह इस प्रकार नहीं करना चाहिये जिस प्रकार वह कर रहा है। कोई भी काम करने का एक तरीका होता है, एक व्यवस्था होती है। इसीलिये बावले व्यक्ति का कोई काम नहीं माना जाता। उसे उसकी निरर्थक क्रियाशीलता ही समझा जाता है। यही अवस्था किसी उतावले व्यक्ति की होती है। उसका भी कोई काम व्यवस्थित अथवा विश्वस्त नहीं होता। इसीलिए "जल्दी का काम शैतान का" कहा जाता है।

प्राय: होता यह है कि किसी काम को जल्दी से निपटाने के लिये लोग उतावली बरतते हैं किन्तु उसका परिणाम उल्टा ही होता है। उतावली के साथ किये हुए काम बहुधा जल्दी होने के बजाय देर में ही हो पाते हैं—सो भी अव्यवस्थित, अस्त व्यस्त एवं त्रुटि पूर्ण। किसी काम को करने के लिए एक अपेक्षित गति तथा समय की आवश्यकता होती है। जब मनुष्य किसी काम के लिए आवश्यक गति में बढ़ोतरी और समय में कटौती करेगा—दो घण्टे के काम को एक घण्टे की हड़बड़ी में पूरा करने में अन्धाधुन्ध लग जायेगा तो उसका बिगड़ जाना स्वाभाविक है। जब क्षण-क्षण पर भूलें होंगी, गलतियों और कमियों को अवसर मिलेगा। तब उनको सँभालने, देखने और दूर करने में दोहरा परिश्रम करना पड़ेगा जिसमें अधिक समय लगेगा ही ! इस प्रकार समय की बचत तो नहीं होती, काम भी गलत-सलत होता है सो अलग। जल्दी में गलतियाँ करते हुए उन्हें बार-बार सँभालने की अपेक्षा, कहीं अच्छा है कि किसी काम को धैर्यपूर्वक सावधानी के साथ किया जाय।

जब कोई काम उतावली के साथ किया जाता है तब मन में एक उद्वेग आन्दोलित होता चलता है जिससे चित्त चंचल रहता है, बुद्धि में व्याकुलता तथा व्यग्रता का समावेश होता है, जिससे न तो एकाग्रता प्राप्त होती है और न काम की व्यवस्था बन पाती है। उतावली के साथ काम करने वाले का ध्यान काम में नियोजित रहने के बजाय उसकी ज्यों त्यों समाप्ति में लगा रहता है। वह काम प्रारम्भ करने से पूर्व ही उसकी समाप्ति के लिये उत्सुक होने लगता है, जिससे काम करने में बीच में लगने वाला

समय उसके लिए एक भार बन जाता है और वह उसे ज्यों-त्यों बेगार की तरह काटने के लिये व्यग्र होने लगता है। उतावले व्यक्ति की काम में रुचि नहीं होती। वह उसे ज्यों-त्यों निबटा कर अपना पीछा छुड़ाने का प्रयत्न किया करता है। काम करने का यह तरीका बिल्कुल गलत है। इससे न केवल काम ही बिगड़ता है बल्कि समय खराब होने के साथ-साथ काम करने की शक्तियों का ह्रास होता है, अदक्षता एवं असावधानी का दोष उत्पन्न होता है। इस प्रकार उतावली करने वाला अपनी न जाने कितनी हानि करता है।

जल्दबाज आदमी हर काम में उतावली किया करता है। ऐसा करते समय उसे यह भी ध्यान नहीं रहता कि उसके करने में क्या हानि होगी? भोजन करते समय जल्दी-जल्दी ग्रास मुँह में डालेगा, जल्दी हाथ चलायेगा झटपट चबायेगा और अधकचरा ही निगल लेगा। कभी दाल के पहले शाक और शाक से पहले दाल खायेगा। कभी कुछ भूल जायेगा तो कभी कुछ। मतलब यह है कि उसका भोजन-कार्यक्रम नासमझ बच्चों की तरह अस्त-व्यस्त क्रीड़ा-कौतुक जैसा बन जायेगा। जिससे वह न केवल पात्रों तथा स्थान को गन्दा करेगा बल्कि कपड़े भी खराब कर लेगा। साथ ही स्वाद से वंचित होकर स्वास्थ्य का भी अहित करेगा। जल्दी-जल्दी ज्यों-त्यों चबाकर निगल लेने से मुख में भोजन का स्वाद तो नहीं मिलेगा, अधकचरे ग्रास पेट में जाकर दाँतों का दायित्व आँतों को सौंपेंगे जिससे अजीर्ण, पीड़ा, अपच तथा मन्दाग्नि का विकार पैदा होगा और अस्वस्थता का शिकार होना पड़ेगा! भोजन को क्रम के साथ अपेक्षित गति, धैर्य और स्वाद के साथ आदर पूर्वक करना चाहिये। इस प्रकार सुचारुता से किया हुआ साधारण भोजन भी स्वास्थ्य को असाधारण लाभ करता है।

बहुत से लोग यात्रा के समय तो उतावली करने में कमाल कर देते हैं। यह रख, वह हटा, यह बाँध, वह खोल, यह पहन, वह उतार, ताँगा छोड़, रिक्शा पकड़ आदि की ऐसी हड़बड़ी मचा देते हैं मानो हाला-चाला आ गया हो और उनकी समझ में ही नहीं आता कि क्या करें और क्या न करें?

जिसका फल यह होता है कि बहुधा यात्रा के लिये आवश्यक चीजें छूट जाती हैं और अनावश्यक चीजें साथ लग लेती हैं, जिनका परिणाम बीच रास्ते अथवा गन्तव्य स्थान पर पहुँच कर व्यग्रता, परेशानी तथा पश्चात्ताप के रूप में सामने आता है। कभी-कभी तो इस उतावली में यात्रा का मुख्य उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है। टिकट लेने, रेलगाड़ी पर चढ़ने आदि में ऐसी हड़बड़ी करते हैं कि अपने आप तो परेशान होते ही हैं दूसरों के लिए भी असुविधा एवं अप्रसन्नता का कारण बनते हैं। जल्दी में टिकट के पैसे ज्यादा दे सकते हैं और कुली चुकाते समय चौवन्नी की बजाय अठन्नी जेब से निकल सकती है। छोटे पैसे ऊँगलियों के बीच से गिर सकते हैं। मनीबैग कोट की जेब में जाने के बजाय स्वेटर में फँस कर गिर सकता है अथवा जल्दी में ठीक से न रखा जाकर निकला रह सकता है जिससे किसी गठकटे के पौबारह हो सकते हैं। इतना ही नहीं उतावली के कारण और न जाने कितनी तरह की अस्त-व्यस्ततायें हो सकती हैं जो क्षति करने के साथ उपहासास्पद बना सकती हैं। यात्रा करने से पूर्व ठीक से उसकी तैयारी करियें, सोच-समझ कर सारा सामान रखिये, हटाइये, विश्वास पूर्वक टिकट लीजिये, आश्वस्त होकर गाड़ी में चढ़िये, ठीक से सामान रखाइये और कुली को पूरे पैसे दीजिये। यात्रा को यात्रा तक सीमित रखिये, उतावली में उसे संकट अथवा समस्या न बनाइये।

किसी से बात करते समय उतावली बड़े-बड़े अनर्थों तथा आपदाओं का कारण बन जाती है। जल्दी में क्या से क्या कह जाना, किसी के कथन का क्या-से-क्या अर्थ लगा लेना तो एक साधारण भूल है। बिना विचार किये और शब्दों के उच्चारण प्रकार और प्रभाव को समझे बिना कह निकलना न जाने कितनी गलतफहमियाँ पैदा कर सकता है। अर्थ का अनर्थ अथवा अत्यर्थ उपस्थित कर सकता है। इससे कितनी हानि और सम्मान क्षति हो सकती है, इसका अनुमान कर सकना कठिन है। उतावली में देश, काल कथन और परिस्थिति का ज्ञान न रहने से संकटापन्न स्थिति की सम्भावना रह सकती है। बात करते समय तो धैर्य और सावधानी की बहुत बड़ी

आवश्यकता है। अच्छी तरह से सोच समझ कर ही बात अथवा मतीम करना ठीक होता है।

किन्तु उतावली न करने का अर्थ यह भी नहीं है कि हर काम को अनावश्यक विलम्ब से किया जाये ! इतने धीरे-धीरे किया जाये कि वह अपेक्षित समय में पूरा न होकर सर पर बोझ बना रहे। हर काम को अभ्यास के अनुरूप इस प्रकार किया जाना चाहिये जिससे कि न तो वह बिगड़े और न अनावश्यक विलम्ब हो। काम का जल्दी अथवा देर में कर सकना अपने अपने अभ्यास पर निर्भर होता है। यदि आप कोई काम दक्षता पूर्वक जल्दी करना चाहते हैं तो उचित रूप से धीरे-धीरे उसका अभ्यास बढ़ाइये। अभ्यास बढ़ जाने से काम स्वयं ही अपेक्षित समय से ठीक से होने लगेंगे।

उतावली न करने का मतलब यही है कि कोई काम करते समय चित्त हड़बड़ी से ग्रस्त न रहे, आपको उसे ज्यों-त्यों निपटाने की हिम्मत न हो। काम को पूरी तरह चित्त लगाकर निरन्तरता के साथ करिये, न तो जान बूझकर विलम्ब कीजिए और न उसे निपटाने की जल्दी में पड़िये। उतावली वास्तव में शीघ्रता नहीं बल्कि कमजोर मन की विक्षिप्तता होती है जो आवेग से भरकर उतावला बना देती है। अपनी इस मानसिक दुर्बलता से बचना चाहिए और काम को उतावली के साथ करने के बजाय जमे हुए ढंग से करना चाहिए। उतावली से काम बनता नहीं बिगड़ता ही है।

धैर्य रखिये—उतावली मत कीजिये—

धैर्य हमारे सङ्कट-काल का मित्र है। इसी से हमें सान्त्वना मिलती है। कैसी भी हानि या क्षति हो जाय, धैर्य उसे भुलाने का प्रयत्न करता है।

धैर्य न हो तो मानसिक दौर्बल्य के कारण मन सदा भयभीत रहेगा। जब मनुष्य के मन में शंका बढ़ जाती है तब दुःख के मिट जाने पर उसका आभास रहा करता है। जो व्यक्ति धीरजवान् होते हैं, वे सङ्कट के समय अपने विवेक को नष्ट नहीं होने देते। उनके आत्मबल के कारण ही उस समय भी शान्ति मिलती है और दूसरे लोग भी उनका अनुकरण करने को बाध्य

होते हैं। तब वह सङ्कट उतना व्यथित नहीं करता, जितना कि धीरज के अभाव में।

धैर्यवान् मनुष्य के अन्तःकरण में अत्यन्त शान्ति, भविष्य की सुखद आशा और उदारता की प्रबलता रहती है। वह दुर्दिन के फेर में पड़कर घबराता नहीं,बल्कि उन दिनों को हँसते हुए टालने की चेष्टा करता रहता है।

इसके विपरीत जिसके मन में धैर्य नहीं होता, उसके मन में जो आशा-निराशा की तरंगें उठती हैं, वे वैसी ही हैं जैसे कोई बालू की दीवार खड़ी होकर भी ढह पड़े। सङ्कट के समय उसकी मानसिक वेदना बढ़ जाती है और वह अपने भावों पर नियन्त्रण रखने में समर्थ नहीं होता। ऐसे लोगों की दशा बहुत खराब होती देखी गई है और उनमें भी कुछ अत्यन्त दुर्बल प्रवृत्ति के मनुष्यों का मानसिक सन्तुलन तो यहाँ तक बिगड़ जाता है कि वे आत्म-हत्या तक कर बैठते हैं।

सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए ही नहीं बल्कि अपने कर्तव्य पालनार्थ भी कर्मों को सुव्यवस्थित करने के लिए धैर्य आवश्यक है। मान लीजिए कि आप किसी मुकदमे में फँसे हैं, परन्तु उसके निर्णय में विलम्ब है, इस बीच में कोई अधिकारी व्यक्ति उस मुकदमे की जाँच के समय आपको किसी बात पर डाँटता है तो उससे आपका विचलित हो उठना ही आपकी हार का कारण बन सकता है। यदि आप उसमें धैर्य से काम लें तो विजय प्राप्त कर सकते हैं।

धैर्य के लिए दोष-रहित मनोवृत्ति और अपने कर्म के उचित होने का विश्वास होना चाहिए। यदि आपका कार्य न्याययुक्त नहीं है तो आप कितने भी साहस से काम लें, मन में शङ्का भरी रहेगी और धैर्य आपका साथ नहीं देगा। इसके विपरीत यदि आप यह समझते हैं कि आप जो कार्य कर रहे हैं, वह न्याययुक्त होते हुए भी बिगड़ रहा है, तो भी आपका मन निर्भीक रहेगा और अपने धैर्य-बल से ही सफलता प्राप्त कर सकेंगे। इसे मत भूलिए कि संसार में धन और प्रतिष्ठा ही सब कुछ नहीं है। धनवान तो मूर्ख भी

हो जाते हैं, और कभी-कभी निम्न स्तर के लोग भी ऊँची से ऊँची प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु उनमें से जिसमें भी अहङ्कार उत्पन्न हुआ, वही पतित हो गया। यह 'अहं' ही उन्हें नष्ट करने में कारण बनता है, फिर न आत्मबल साथ रहता है और न धैर्य ही।

धीरजवान् पुरुष वही कहलाता है जिसे अपने पर पूर्ण भरोसा हो। जो व्यक्ति अपनी योग्यता पर विश्वास करता हुआ सम्बल ग्रहण करता है, वह कष्ट पाता हुआ भी प्रसन्न चित्त रहता है। क्योंकि वह कठिनाइयों से घबराता नहीं।

एक बार निश्चय हो जाने पर कार्य को पूर्ण करने में सचेष्ट रहे और उससे पीछे न हटे। मन की निराशा को दूर कर दे और विघ्नों को दूर करने का प्रयत्न करे। अपनी कार्य शक्ति पर विश्वास और परमात्मा पर भरोसा रखने से मँझधार में पड़ी हुई नौका भी तर जाती है।

धैर्य के समान मूल्यवान् और कोई सम्पत्ति मनुष्य के पास नहीं है। जब तक वह उससे दूर नहीं होता, तब तक उसकी विजय को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। हमारा धैर्य शत्रुओं को भी विचलित कर देता है और हम सर्वत्र प्रशंसा के पात्र समझे जाते हैं।

धैर्य की उपयोगिता तो असीम है। कोई रासायनिक प्रयोग है, उसकी सिद्धि का समय चार घण्टे का है और आप चाहें कि दो घण्टे में ही सिद्धि हो जाय, तो कैसे होगा? उसके लिए तो आपको प्रयोगकाल में धैर्य से काम लेना पड़ेगा। न लेंगे तो कुछ होने वाला नहीं है।

बहुत से लोग हैं जो समाज में अपनी ख्याति चाहते हैं। परन्तु, ख्याति ऐसा काम किये बिना हो नहीं सकती, जिसमें कुछ न कुछ विशेषता हो। ख्याति प्राप्त करने के लिए जन-सेवा का कार्य करना पड़ेगा। इन कार्यों में परिश्रम एवं समय दोनों की ही आवश्यकता होगी और ख्याति होने में जितना समय लगेगा, उतने समय तक धैर्य भी रखना ही होगा।

सब कार्यों का परिणाम धैर्य से ही देखा जा सकता है। वैसे धैर्य अलभ्य वस्तु नहीं है। अपने मन को थोड़ा नियन्त्रित कीजिए, उसकी चञ्चलता

को रोकिये और किसी भी कार्य में उतावली न करने का निश्चय कर लीजिए। जहाँ आपने अपने असंयम पर विजय प्राप्त की वहीं धैर्य की प्राप्ति हो गई समझिये।

हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि जो कार्य शीघ्र हो सकता हो, उसके करने में देर लगाई जाय अथवा जो कार्य होने जा रहा है उसमें धैर्य के बहाने आलस्य से काम लिया जाय। जो कार्य शीघ्रतापूर्वक हो सकता है, उसकी पूर्ति में विलम्ब करना तो सचमुच ही मूर्खता है।

धैर्य का मन्त्र तो उसके लिए लाभदायक है, जिनके कार्यों में विघ्न-बाधाएँ उपस्थित होती हैं और वे निराश होकर अपने विचार को ही बदल डालते हैं। यह निराशा तो मनुष्य के लिए मृत्यु के समान है। इससे जीवन की धारा का प्रवाह मन्द पड़ जाता है और वह किसी काम का नहीं रहता। यदि निराशा को त्याग कर विघ्नों का धैर्यपूर्वक सामना किया जाय तो विश्वास करिये कि आपको असफलता का मुख नहीं देखना पड़ेगा।

निराशाजनक भावों को रोकना आवश्यक है और संयम का कार्य है। हम जैसे-जैसे अपनी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक शक्तियों का विकास कर सकेंगे, वैसे-वैसे ही हम में धैर्य रखने की शक्ति भी बढ़ती जायगी। इन सभी शक्तियों के सम्मिलन से हम उस ध्येय को प्राप्त कर सकते हैं। मान लीजिए हम किसी कार को चलाना जानते हैं, मार्ग भी हमारा देखा हुआ है, परन्तु यह सब ज्ञान, हमारे अभीष्ट स्थान में पहुँचने में जितना समय लगना चाहिए, उसमें तो कमी नहीं कर सकेगा। हमें उतने समय तो धैर्य का सहारा लेना ही होगा।

अधीरता मनुष्य की क्षुद्रता का चिन्ह है—

मन का शान्त और संतुलित होना व्यक्ति की महानता का चिन्ह है। मनु भगवान् ने धर्म के १० लक्षणों की चर्चा करते हुए मनुष्य का सबसे पहला धर्म 'धृति' अर्थात् धैर्य बतलाया है। सामने उपस्थित उत्तेजनात्मक परिस्थिति की भी वस्तुस्थिति को यदि ठीक प्रकार समझने की कोशिश की

जाय तो वह मामूली-सी बात प्रतीत होगी। जिन छोटी-छोटी बातों को लेकर लोग सुख में हर्षोन्मत्त और दुःख में करुणा कातर हो जाते हैं वस्तुतः वे बहुत साधारण बातें होती हैं। मनुष्य की मानसिक दुर्बलता ही है जो उसे उन छोटी-छोटी बातों में उत्तेजित करके मानसिक सन्तुलन को बिगाड़ देती है। इस स्थिति से बचना ही धैर्य है। धैर्यवान् व्यक्ति ही विवेकशील और बुद्धिमान् कहे जा सकते हैं जो बात-बात में उत्तेजित और अधीर होते हैं वे चाहे कितने ही विद्वान् या प्रतिष्ठित क्यों न हों वस्तुतः ओछे ही कहे जायेंगे।

एक व्यक्ति के घर में पुत्र जन्म होता है उसके हर्ष का ठिकाना नहीं रहता। इस हर्ष में पागल होने पर उसे यह नहीं सूझता कि इस प्राप्त लाभ के अवसर पर क्या करे—क्या न करे ? जो खुशी उसके भीतर से फूटी पड़ती है उसे बाहर प्रकट करने के लिए वह उन्मत्तों जैसे आचरण करता है। दरवाजे पर नौबत, नफीरी बजवाना आरम्भ करता है। बड़े विशाल प्रीतिभोज की तैयारी करता है, नाच-रंग का सरन्जाम जुटाता है। बधाई बटवाने के लिए अपने समाज में थाल, गिलास, मिठाई आदि बँटवाता है और भी न जाने क्या-क्या करता है ? ढेरों पैसा उसमें फूंक देता है।

यह स्थिति एक प्रकार के पागलपन का चिन्ह है। पुत्र जन्म होना उसे अपने लिए एक अलभ्य लाभ मालूम पड़ता है, पर व्यापक दृष्टि से देखा जाय तो प्रकृति की एक अत्यन्त साधारण घटना है। प्राणिमात्र में प्रणय की इच्छा काम कर रही है और संयोग के फलस्वरूप बाल-बच्चे भी सभी जीव-जन्तुओं के होते रहते हैं। सन्तान में पुत्र और कन्या यही दो भेद हैं। इस सृष्टि में करोड़ों बालक नित्य पैदा होते हैं। जिस प्रकार घास-पात, पेड़-पौधे रोज ही उगते, सूखते हैं उसी प्रकार मनुष्यों में सन्तानोत्पादन की क्रिया चलती रहती है। प्रकृति प्रवाह की इस अत्यन्त तुच्छ प्रक्रिया को इतना महत्व देना कि खुशी का ठिकाना न रहे और उसके लिए वह उपयोगी धन जो किसी आवश्यक कार्य में लगाकर उससे महत्त्वपूर्ण लाभ उठाया जा सकता था—इस प्रकार हर्षोन्मत्त होकर लुटा देना किसी प्रकार बुद्धिमत्ता पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

यदि वह व्यक्ति जिसके घर पुत्र जन्मा है वस्तुतः बुद्धिमान् रहा होता तो उसके सोचने का तरीका भिन्न ही रहा होता । वह हर्षोन्मत्त न होकर गम्भीरता से सोचता कि घर में नया बालक जन्मने से उसके ऊपर क्या-क्या जिम्मेदारी आई हैं ? और उन्हें किस-किस प्रकार पूरा करना चाहिए ? वह सोचता कि मेरी जिस धर्म-पत्नी ने बालक को जन्म दिया है वह दुर्बल होगई होगी, उसे अधिक विश्राम देने, तेल मालिश आदि के उपायों से उसके दुर्बल शरीर को पुष्ट करने, शीघ्र पचने वाले पौष्टिक खाद्य पदार्थों को जुटाने, नवजात शिशु की देखभाल के लिए कोई सहायिका नियुक्त करने, बालक को यदि माता का दूध पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध नहीं है तो उसकी व्यवस्था करने में उसे यथा-संभव प्रयत्न करने चाहिए ? इन प्रयत्नों में यदि पैसा खर्च किया जाता तो उसे धर्म-पत्नी तथा बालक के स्वास्थ्य को सम्हालने में सहायक होता है । पर यदि इन बातों पर ध्यान न देकर नफीरी बजवाने और दावतें उड़ाने में धन फूँका गया है तो यही मानना पड़ेगा कि वह व्यक्ति समझदार नहीं वरन् उत्तेजना के आवेश में बहने वाला व्यक्ति है ।

यदि फालतू पैसा भी किसी आदमी के पास हो तो उसे इस प्रकार लुटाने की जरूरत नहीं है । उस नवजात शिशु के बड़े होने पर उसकी शिक्षा विवाह आजीविका आदि के लिये जिस धन राशि की आवश्यकता पड़ेगी उसे जुटाने के लिए उसके नाम बैंक में या बीमे में पैसा जमा किया जा सकता है । यदि दान, पुण्य करना है तो किन्हीं लोकोपयोगी कार्यों में या दीन-दुःखियों में, उपयोगी संस्थाओं में इसे दिया जा सकता है । पर यह समझ तभी उत्पन्न हो सकती है जब मनुष्य भावावेश में न बह रहा हो, हर्षोन्मत्त होने की दशा में भी मस्तिष्क विक्षिप्त सरीखा हो जाता है और उस स्थिति में कोई ठीक बात सोच सकना सम्भव नहीं होता ।

"हमारी विवेकशीलता स्थिर रहे" यह तथ्य जीवन को सुविकसित बनाने के लिए बड़ा आवश्यक है और यह तभी सम्भव है जब वह धैर्यवान् हो, अधीरता से बचें । थोड़ी सफलताऐं, इच्छानुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त होने पर सत्ता अधिकार, सम्पत्ति मिलने पर बड़े अहङ्कारी बन जाते हैं । उनका

व्यवहार, बात-चीत का ढङ्ग, सोचने का तरीका, शान-शौकत, अकड़, शेखी-खोरी सभी कुछ बातें ऐसी हो जाती हैं कि उसे आधा पागल ही कहा जा सकता है। कुछ दिन पूर्व इस देश में राजा, नवाब, ताल्लुकेदार, जमींदार, साहूकार बहुत थे। उनके पास धन और सत्ता का बाहुल्य था फलस्वरूप उनके पहनाव-उढ़ाव, बोल चाल, उठन बैठक सभी कुछ विचित्र प्रकार बन गये थे। क्षण-क्षण में विचित्र प्रकार की सनकें उठा करती थीं और चापलूस लोग उन सनकों से भरपूर स्वार्थ साधन किया करते थे सत्ता और धन का बाहुल्य उन अमीरों को ऐसी अर्द्ध विक्षिप्त स्थिति में पहुंचा देता था कि वे उचित अनुचित का निर्णय करने में प्रायः असफल रहते थे। अभी भी जिनके पास ऐसे साधन मौजूद हैं उन अमीरों एवं अधिकारियों की भयङ्कर स्थिति प्रायः उन राजा, नवाबों जैसी हो जाती है।

इसमें दोष साधनों का नहीं मनुष्य की मानसिक दुर्बलता का है। रामायण में एक चौपाई आती है---

क्षुद्र नदी भरि चलि इतराई। जिमि थोरेहु धन खल बौराई॥

छोटे नदी, नाले जिस प्रकार वर्षा के थोड़े से ही पानीको पाकर अपनी मर्यादाओं को छोड़कर उफनने, इतराने, लगते हैं उसी प्रकार क्षुद्र पुरुष भी थोड़े सुख-साधनों के प्राप्त होने पर बावले हो जाते हैं। इनमें वर्षा या जल का दोष नहीं---नाले की क्षुद्रता ही कारण है। क्योंकि समुद्र और विशाल नदी,सरोवर विशाल क्षेत्र की भारी वर्षा का विपुल जल प्राप्त होने पर भी अपनी मर्यादाओं को नहीं छोड़ते। धैर्यवान् और गम्भीर मानसिक स्तर के लोग भी विपुल सत्ता, विद्या, कीर्ति एवं सम्पदा प्राप्त होने पर भी इतराते नहीं वरन् अपने ऊपर आये हुए उत्तरदायित्वों की गम्भीरता को समझ कर और भी अधिक विवेक, धैर्य दूरदर्शिता एवं नम्रता से काम लेते हैं। यदि धन या सत्ता का दोष रहा होता तो सभी पर उसका प्रभाव पड़ता, पर हम देखते हैं कि संसार में ऐसे असंख्य व्यक्ति हैं जो विपुल साधनों के हस्तगत होते हुए भी अत्यधिक जिम्मेदारी और सज्जनता की स्थिति में बने रहते हैं।

जिस प्रकार सफलता और सम्पदा को पाकर क्षुद्र प्रकृति के मनुष्य मानसिक संतुलन खो बैठते हैं उसी प्रकार थोड़ी-सी असुविधा, असफलता, आपत्ति एवं प्रतिकूल परिस्थिति सामने आने पर अत्यन्त कातर हो जाते हैं, घाटा, चोरी, धन-हानि आदि कोई अर्थ-विग्रह अवसर आने पर उन्हें लगता है मानों उनका सर्वस्व चला गया। अब वे सब प्रकार से दीन-हीन हो गये। अब सदा उनको ऐसी ही विपन्न स्थिति में रहना पड़ेगा एवं आगे चल कर और भी गरीबी में प्रवेश करना पड़ेगा।

किसी परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाने पर उन्हें लगता है कि हमारा जीवन ही अन्धकारमय हो गया है। असफलता की भयङ्कर प्रतिमूर्ति उन्हें अपने चारों ओर नाचती दिखाई पड़ती है। उनके दुःख का ठिकाना नहीं रहता। मस्तिष्क ऐसा निष्क्रिय हो जाता है जिसमें यह विचार नहीं उठ पाते कि अगले एक वर्ष बाद फिर परीक्षा का अवसर मिलेगा और उन्हें थोड़े दिन बाद अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होने का अवसर मिल जायगा।

किसी से थोड़ी कहन-सुनन हो जाय तो लगता है मानो मेरा सारा सम्मान चला गया, जिसने कटु वचन कह दिया उसने कलेजे में छेद कर दिया जो जन्म भर न भरेगा। ये लोग उस छोटी-सी बात को भुला सकने में प्रायः जीवन भर समर्थ नहीं होते, जब भी अवसर आता है उस छोटी-सी बात को याद करके अपने द्वेष और घाव को हरा कर लेते हैं।

कोई मामूली-सा मुकदमा लग जाय तो प्रतीत होता है मानों अब जेल या फाँसी ही भुगतनी पड़ेगी। कोई चोर, डाकुओं का भय दिखा दे तो लगता है कि डकैती, लूट या चढ़ाई आज ही हमारे ऊपर होने वाली है। अपने घर में भूत रहता है ऐसा भय कोई ओझा दिखादे तो रात भर नींद नहीं आती और चूहे खटपट करते हों तो लगता है कि भूत, जिन्द घर में नाच रहे हैं। शनिश्चर, राहु, केतु के ग्रह-दशा या मारकेश का भय दिखा कर चतुर ज्योतिषी लोग ऐसे लोगों को खूब डराते हैं और उनकी पूजा-पत्री के नाम पर काफी पैसा ऐंठ लेते हैं।

कन्या विवाह के योग्य हो जाय और लड़के ढूँढ़ने के लिए जाने पर सफलता न मिले। दहेज आदि का प्रश्न उठे तो उन्हें लगता है कि अब कन्या का विवाह न हो सकेगा। योग्य लड़का मिलेगा ही नहीं। इतनी बड़ी रकम दहेज में दिये बिना अब कोई लड़का मिलेगा ही नहीं। कन्या पर्वत के समान भारी लगती है और रात-दिन भाग्य को कोसते हुए, कन्या को अभागिनी बताते हुए चिन्ता में सिर धुनते रहते हैं। इस प्रकार अपना मनःक्षेत्र दुःखित कर लेने पर उन्हें यह नहीं सूझता कि जो दो चार लड़के उनने ढूंढे हैं इनके अतिरिक्त सज्जन और सुन्दर लड़के वाले भी इस दुनियां में मौजूद हैं और थोड़ी दौड़-धूप करके उन्हें ढूंढा जा सकता है एवं विवाह की समस्या को सरल बनाया जा सकता है।

किसी प्रियजन का वियोग या देहावसान हो जाय तो उनकी आँखों से आँसू ही बन्द नहीं होते। दिन-रात पेट में से हूक उठती रहती है। सारा संसार अन्धकारमय दीखता है, इसके बिना जीवन कैसे सम्भव होगा? इस शोक-वियोग से कितने ही व्यक्ति अपना प्राणान्त कर लेते हैं। ऐसी ही शील-युक्त कई भावुक स्त्रियाँ पति की चिता पर जल मरती देखी जाती हैं। ऐसे लोगों की मनोभूमि एक ही प्रकार के शोक संकुचित विकारों से ऐसी आच्छादित हो जाती है कि वे विवेकपूर्ण विचार उठा ही नहीं पाते जिनके आधार पर यह सोचा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वतः में एक पूर्ण इकाई है और किसी दूसरे के साथ रहने न रहने पर भी अपनी जीवन-यात्रा अपने पाँवों पर खड़े होकर चला सकता है।

जीवों का आपसी मिलन और बिछुड़न समुद्र की लहरों की तरह क्षण-क्षण में होती रहने वाली एक ऐसी साधारण प्रक्रिया है जिस पर सीमित शोक ही मनाया जाना चाहिये। यह विचार भी उसके मन में नहीं उठते क्योंकि शोकाकुल मस्तिष्क भी अर्ध विक्षिप्त स्थिति में ही होता है।

ऐसे दुर्बल मस्तिष्कों में भविष्य में कहीं आपत्तियों के आने की आशङ्काएँ निरन्तर उठती रहती हैं। अपने ऊपर ऐसी-ऐसी विपत्तियों के

आने की बात सोच-सोच कर अपना चित्त परेशान किया करते हैं जो वस्तुतः उनके जीवन में कभी नहीं आती।

यह अधीरता एवं मानसिक दुर्बलता मनुष्य के लिए कायरता का कलंक लगाने वाली, इसके पुरुषार्थ को कलंकित करने वाली है। पौरुष का प्रधान लक्षण यह है कि मनुष्य को आपत्तियों में न डरने वाला और हर प्रतिकूल परिस्थिति में अपने धैर्य को स्थिर रखने वाला होना चाहिए।

चिन्तायें छोड़िये काम में जुटिये—

जिसे अपने जीवन में सुख-शान्ति की आकांक्षा है, जिसे उन्नति, विकास और सफलता की कामना है, उसे अपने सबसे घातक शत्रु 'चिन्ता' का त्याग कर देना चाहिए। मनुष्य की जिस शक्ति पर उन्नति, विकास और सफलता निर्भर रहती है उसे यह चिन्ता की आग जलाकर भस्म कर देती है। अशक्त व्यक्ति जीवन में किसी प्रकार का श्रेय प्राप्त नहीं कर सकता। चिन्ता के त्याग से मनुष्य की बची हुई शक्ति उसके बड़े काम आ सकती है।

सामान्यतः लोगों की यही धारणा रहती है कि मनुष्य की चिन्ता का कारण उसके जीवन का कोई न कोई अभाव ही होता है। एक प्रकार से अभाव ही चिन्ता का रूप धारण कर लेता है। किन्तु यदि इस विषय पर गहराई से विचार किया जाय तो पता चलेगा कि अभाव और चिन्ता दो भिन्न बातें हैं। अभाव की वेदना जहाँ क्रिया की प्रेरिका है वहाँ चिन्ता मनुष्य को निष्क्रिय बना देती है। जिस अभाव की पूर्ति के बिना मनुष्य को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है उसकी पूर्ति के लिए वह अवश्य प्रयत्नशील होगा। किन्तु चिन्ता एक ऐसा आलस्य रोग है जो मनुष्य के समग्र जीवन को प्रभावित करके किसी काम का नहीं रखती।

जो व्यग्रता अपने कारण को दूर करने के लिये क्रियाशील बनाये, वह उत्तरदायित्व की भावना ही है, चिन्ता नहीं। चिन्ता केवल उसी व्यग्रता को कहा जा सकता है जो मनुष्य को अपने तक सीमित करके केवल सोचने और जलने के लिए मजबूर करे।

मनुष्य ने ज्यों-ज्यों विकास किया है त्यों त्यों उसकी आवश्यकतायें बढ़ गई हैं, जिसके फलस्वरूप उसकी चिन्तायें भी बढ़ गई हैं। जीवन की आवश्यकतायें पूरी करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ चिन्ता करनी ही होती है, किन्तु इस चिन्ता को उस प्रकार की चिन्ता नहीं कहा जा सकता जो किसी के जीवन को अभिशाप बना कर रख देती है। भोजन-वस्त्र, शादी-ब्याह, हारी-बीमारी, पालन-पोषण आदि जीवन के ऐसे सामान्य साधारण एवं अनिवार्य कार्य-क्रम हैं जिन्हें सब को ही किसी न किसी प्रकार से पूरा करना पड़ता है। यदि यह कार्य-क्रम समान रूप से सबकी चिन्ता का विषय बनकर जीवन को आक्रान्त कर लें तो संसार में चारों ओर उदासी, विषाद, व्यग्रता, विकलता आदि के अतिरिक्त और कुछ दिखाई ही न दे। हर मनुष्य रोता और आहें भरता ही बैठा रहे। पर ऐसा कभी नहीं हो सकता, क्योंकि कोई एक बात समस्त समाज को एक रूप में ही प्रभावित नहीं कर सकती। अपनी-अपनी मनोभूमि के स्तर के अनुरूप ही मनुष्य पर किसी बात का न्यूनाधिक प्रभाव पड़ता है। जहाँ कोई एक व्यक्ति किसी एक बात से दब, कुचलकर निर्जीव हो जाता है वहाँ दूसरा पूरी तरह निश्चिन्त तथा प्रसन्न दीखता है। इसका कारण उन दोनों की अपनी अपनी मनोभूमि का स्तर ही है।

अभावों में किसी को व्यग्र करने की अपनी शक्ति नहीं होती। यह मनुष्य का चिन्ताशील स्वभाव ही होता है जो एक छोटी-सी बात को लेकर मन ही मन 'ईरान से तूरान' तक समस्याओं का जाल बिछा कर अपने को उनमें फँसाकर घोर कष्ट पाता हुआ अनुभव किया करता है।

भोजन-वस्त्र आदि यद्यपि रोजमर्रा की बातें हैं। किन्तु किसी किसी के लिए ये साधारण बातें ही जीवन-समस्या बन जाती हैं। इनको लेकर वे इतने चिन्तित रहा करते हैं कि विविध रोगों के शिकार बन जाते हैं। आँख, दाँत, कान, आदि कमजोर कर लेते हैं, बाल पका लेते हैं और अकाल में ही बूढ़े हो जाते हैं। इस प्रकार व्यक्ति चिन्ताशील स्वभाव के होते हैं। चिन्ता, उनका उत्तरदायित्व यही एक व्यसन, व्याधि, प्यास और आवश्यकता बन

जाती है। जब तक वे किसी बात को लेकर व्यग्र नहीं हो लेते उन्हें चैन ही नहीं पड़ता। यदि ऐसे व्यक्तियों को व्यर्थ चिन्ता करने से रोका जाये तो वे एक मानसिक परेशानी अनुभव करते हैं। यही कारण है कि अधिक मना करने पर चिन्ताशील व्यक्ति कभी कभी बुरा मान जाता है और सोचने लगता है कि अमुक व्यक्ति उसे उसके उत्तरदायित्व की भावना से विरत कर हानि चाहता है। वास्तव में चिन्ताशील व्यक्ति की मानसिक शिथिलता का सहारा पाकर अत्यधिक एवं अनावश्यक उत्तरदायित्व की भावना भी भयानक चिन्ता रूपी सर्पिणी बन कर उसके मनोमन्दिर में बस कर उसके रक्त, मांस का भोजन किया करती है। चिन्ता रूपी सर्पिणी का भोजन मनुष्य का रक्त ही है, जो इसको अपने जीवन में पालेगा उसे इसको अपना रक्त पिलाना ही होगा।

चिन्ताशील व्यक्ति बहुत कुछ कल्पनाशील ही होता है। किन्तु उसकी कल्पना का लक्ष्य सृजनात्मक नहीं होता ध्वंसात्मक होता है। जिस प्रकार प्रसन्नचेता व्यक्ति की कल्पनायें कला-कौशल, उन्नति, विकास आदि के मधुर स्वप्नों के चित्र बनाया करती हैं, उसी प्रकार चिन्ताशील व्यक्ति की कल्पनायें नहीं। ऐसे व्यक्तियों की कल्पनायें ऐसे ही मार्ग से चला करती हैं जिनके बीच में आशङ्कायें, अमंगल, अनिष्ट, निराशा, असफलता, भय एवं भीरुता के गर्तों में गह्वर पड़ा करते हैं।

आजीविका जैसी सहज समस्या को ही ले लिया जाये और एक चिन्ताशील व्यक्ति की तुलना निश्चिन्त प्रवृत्ति के व्यक्ति से की जाये तो एक महान् अन्तर सामने आयेगा। निश्चिन्त प्रवृत्ति का व्यक्ति सोचेगा—आज नहीं तो कल जीविका अवश्य प्राप्त होगी। आज कहीं परिश्रम करके रोटी कमा लेंगे, कल किसी अच्छे स्थान पर पहुँच जायेंगे। परिश्रम एवं पुरुषार्थ के बल पर मैं अवश्य ही अच्छे साधन का प्रबन्ध कर लूंगा। मैं जीवन रण में हारने अथवा पीछे हटने वाला नहीं हूं। इसके विपरीत चिन्ताशील व्यक्ति सोचेगा—जब आज ही जीविका नहीं मिली तो कल कहाँ से आ जायेगी? मेरे पास जो कुछ है उसके खत्म होते ही मरने की नौबत आ जायेगी, मेरे

मर जाने पर बीबी-बच्चों को कौन सहारा देगा ? कौन उनके दुःख-सुख को पूछेगा ? मैं बड़ा निकम्मा हूँ, हाय मेरे कारण ही मेरे बाल-बच्चे दर-दर की ठोकरें खाते फिरेंगे। मुझे कोई सहयोग क्यों देगा ? मैं ही किसी के क्या काम आया हूँ ? मेरा भाग्य खराब है, मेरा समय विपरीत है, मेरा जीवन व्यर्थ है, आदि न जाने कितनी प्रकार की निराशाजन्य अनिष्टों की कल्पना करता-करता चिन्ताशील व्यक्ति अपने जीवन को अभिशाप बना लेता है और निकम्मा होकर उसी की ज्वाला में जला करता है।

एक छोटी-सी चिन्ता जब इतने अनिष्टों को जन्म दे सकती है तब उसे एक क्षण के लिये भी अपने पास रखना बुद्धिमानी नहीं है। जो व्यक्ति चिन्ताओं को आश्रय देता है वह अपने जीवन में अँगार बिखेरने के सिवाय और कुछ नहीं करता। चिन्तित व्यक्ति स्वयं अपने लिये अपना शत्रु होता है।

जिन्हें आत्म-कल्याण की कामना है, जीवन में उन्नति और विकास की आकांक्षा है उन्हें निरर्थक चिन्ताओं से मुक्त रहकर पुरुषार्थ करना चाहिये। जिस प्रकार हाथ-पैर बँधा हुआ व्यक्ति एक छोटी-सी नदी को तैरकर पार नहीं कर सकता, उसी प्रकार चिन्ताग्रस्त आदमी छोटी से छोटी समस्या से भी निस्तार नहीं पा सकता।

चिन्ताओं से मुक्ति का एक मात्र उपाय है हर समय काम में लगा रहना। निठल्ले व्यक्ति को ही चिन्ता जैसी पिशाचिनी घेरती है। जो व्यक्ति कर्मरत है, प्रगतिशील है, चिन्तायें उसे किसी प्रकार भी नहीं घेर सकतीं। चिन्ताओं का जन्म-स्थान एवं निवास-स्थान दोनों ही मनुष्य का 'चित्त' होता है। यदि मनुष्य का चित्त किसी कार्य में व्यस्त रहे तो चिन्ताओं का जन्म ही न हो सके।

बहुत से लोग उत्तरदायित्व की तीव्र भावना को ही चिन्ता मान लेते हैं। उनका सुदृढ़ एवं सत्य विश्वास होता है कि चिन्ता उत्तरदायित्व के प्रति वह सजगता है, जिसके बल पर कोई अपने कर्तव्य को निभाने में तत्पर होता है। ठीक है उत्तरदायित्व का वहन करना हर मनुष्य का कर्त्तव्य

है, किन्तु इसे अपनी निरर्थक भावुकता अथवा चिन्ताशील स्वभाव से बुर्वह बना लेना कोई बुद्धिमानी नहीं है। चिन्ता में लिपटा हुआ उत्तरदायित्व कभी भी ठीक से नहीं पूरा किया जा सकता। मनुष्य का मन मस्तिष्क जितना ही भार-मुक्त होगा वह उतनी ही कुशलता से अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकता है चिन्ताएँ छोड़िये और मुक्त मन एवं दत्तचित्त होकर कर्तव्य का पालन कीजिए आप सफल भी होंगे और प्रसन्न भी।

आत्म-ग्लानि में मत डूबे रहिये

आत्म-ग्लानि मनुष्य के मन की एक भावना ग्रन्थि है जो जाने अनजाने भूलवश या असावधानी में किये गये पापों पर अत्यधिक पश्चाताप करने से पैदा हो जाती है। वैसे किसी भी दुष्कृत्य, पाप-कर्म पर मनुष्य को पश्चाताप अवश्य होता है और उस सीमा तक वह आवश्यक भी है जब मनुष्य भविष्य में वैसा न करने का सङ्कल्प करता है, पाप कर्मों से बचने के लिए भूल सुधार का दृढ़ प्रयत्न होता है। ऐसी स्थिति में पश्चाताप मनुष्य का पाप से उद्धार भी कर देता है। लेकिन जब यह सीमा से अधिक बढ़ जाता है तब—आत्म-ग्लानि का रूप धारण कर लेता है। आत्म-ग्लानि की स्थिति में मनुष्य सुधार की ओर अग्रसर नहीं होता वरन् अपने आपको पापी, दुराचारी मान बैठता है। इस हीन भावना से उसकी कार्यक्षमता, सृजन-शक्ति व्यर्थ ही नष्ट होने लगती है, हीन विचारों में डूबे रहने से कई शारीरिक और मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

आत्म-ग्लानि पैदा हो जाने पर मनुष्य अपने आपको पापी, दुष्ट समझ कर सदा कोसता रहता है। वह सामाजिक जीवन में उतर कर कोई काम करने में एक प्रकार का भय और घबराहट सी महसूस करता है। जो आत्म-ग्लानि के आधिक्य से दबा हुआ है चाहे वह कितना ही योग्य, अनुभवी, ज्ञानकार क्यों न हो, वह प्रगति के पथ पर आगे न बढ़ सकेगा क्योंकि जो आगे कदम रखने के पूर्व ही अपने आपको पापी मान बैठा है, दूसरों के आगे चार आँखें करने की जिसमें हिम्मत नहीं है, सङ्कोच, शङ्कायें, भय जिसे कुछ

करते नहीं देते ऐसा व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में सफल हो सके यह सम्भव नहीं। अत्यधिक पश्चाताप अथवा आत्म-ग्लानि के कारण हम कई बार बिना अपराध के भी अपने आपको अपराधी मान बैठते हैं। कभी बचपन में या किशोरावस्था में कोई भूल हो बैठी हो, बुरी कोई आदत पड़ गई हो, बुरा काम बन पड़ा हो उसे जीवन भर रटते रहना, अपने को कोसते रहना, स्वयं को बुरा समझ बैठना, सचमुच ऐसी भूल है। ऐसी स्थिति में रास्ते में, बाजार में चलते हुए भी मनुष्य यह अनुभव करने लगता है कि दूसरे लोग उसकी बुराइयों को देख रहे हैं और उसे बुरा समझ रहे हैं। इस भय के कारण वह दूसरों से नीची निगाह रखता है। कुछ बोलने से पूर्व हड़बड़ा जाता है।

कई बार हम घटनाओं, परिस्थितियों को अपने ही मापदण्ड से नापने का व्यर्थ प्रयत्न करते हैं। जब इसका परिणाम अपने मनोनुल नहीं निकलता तो इस पर पश्चाताप करते हैं और धीरे धीरे आत्म-ग्लानि के शिकार बन जाते हैं। किन्तु यह तो असम्भव बात है कि जीवन की घटनाओं का हमारी रुचि के अनुसार ही परिणाम निकले। क्यों कि इनका सम्बन्ध केवल हमारी रुचि से ही तो नहीं होता वरन् बहुत-सी बातों से होता है और जब तक सब का तालमेल नहीं बैठता, सफलता नहीं मिलती। अपना एक लक्ष्य एवं निश्चित कार्यक्रम बनाकर उसमें रहें, अनुकूलता पर गर्व भी न करें तो प्रतिकूल परिस्थितियों में पश्चात्ताप भी न करें। यही आगे का माध्यम मार्ग है।

लज्जा, भय, सङ्कोच को दूर करें, पुराने पापों को भूल जायें, मन आत्म-विश्वास साहस की भावनाओं को जगायें, आत्म-ग्लानि से बचने के लिए। स्मरण रहे कि इससे मनुष्य की मौलिक-शक्तियों और क्षमताओं का बहुत ज्यादा ह्रास होता है अतः सफल जीवन के लिए आत्म-ग्लानि से बचें।

मुद्रक—बंसल प्रिंटिंग प्रेस, गूजर घाटी, मथुरा।